श्रावण शुक्ल ५, शनिवार, दिनांक-२८-०७-१९७९
गाथा-३०८-३११, प्रवचन-८

पहले भाग का थोड़ा लेते हैं। बाकी है न? पहले का बाकी है। पीछे है। एक लाईन फिर से (लेते) हैं। एक घण्टा रहा है तो थोड़ा लेते हैं। ज्ञानचन्दजी आये हैं न? उसने कहा। बहुत सूक्ष्म अपूर्व बात है। क्रमबद्ध जो कहा... प्रत्येक द्रव्य की पर्याय जिस समय में जब जो होनेवाली है, वह होगी। उसके बाद के समय में होनेवाली है, (वही) होगी। उसमें कोई द्रव्य भी अपनी पर्याय में फेरफार नहीं कर सकता। आहाहा! जब प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्याय का भी फेरफार—आगे-पीछे कर सकता नहीं तो परद्रव्य से उसमें पर्याय हो, यह तो है नहीं। यह यहाँ कल अपने चला था।

कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया... प्रत्येक पदार्थ वर्तमान समय में अपना कर्ता अर्थात् स्वतन्त्र होकर... कर्ता अर्थात् स्वतन्त्र होकर (करे)। वर्तमान पर्याय जो है, यह उसका कर्म अर्थात् कार्य है। कर्ता-कर्म की प्रवृत्ति परद्रव्य से निरपेक्षतया है। परद्रव्य निमित्त है तो यहाँ ऐसा होता है, ऐसा है नहीं। कथन आये। दोपहर को कथन आया था न? कि कर्म के क्षय से हुआ क्षायिक(भाव)। यह तो निमित्त का ज्ञान कराया। क्षायिक—केवलज्ञान पर्याय होती है, तो पर निमित्त की अपेक्षा तो नहीं, परन्तु पूर्व पर्याय की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है, बहुत सूक्ष्म अपूर्व है।

प्रत्येक पदार्थ की अपने स्वकाल में जन्मक्षण—उत्पत्ति काल में अपने समय से पर्याय उत्पन्न होती है, वह आगे-पीछे भी होती नहीं और पर से होती नहीं। पर की अपेक्षा भी नहीं। जो पर्याय अपने समय में होनेवाली है, वह सत् है। चाहे तो विकार हो या अविकार हो, यहाँ तो अविकार की बात है।... षट्कारक के परिणमन में विकृति है, उससे रहित होना यह अपना स्वभाव-गुण है। षट्कारक से विकृत अवस्था—पर्याय होती है, उससे रहित होना, ऐसा अपने में क्रिया नाम का गुण है। आहाहा! भाव नाम का या क्रिया (नाम का), दोनों में से एक शब्द है। पर से रहित होना, वह अपना गुण है, राग सहित होना, वह अपनी गुणदशा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया...** आहाहा! जिस समय में

द्रव्य की पर्याय होती है, उसमें अन्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं। आहाहा! केवलज्ञान होता है, (उसमें) कर्म के क्षय की अपेक्षा नहीं। क्षय हो। क्षय की व्याख्या? कर्मरूप परिणमन जो है, वह दूसरे समय अकर्मरूप हो, वह क्षय है। क्षय का अर्थ कुछ नाश होता है, ऐसी चीज़ नहीं। कर्मरूप पर्याय थी, यह अकर्मरूप हो गयी, उसे कर्म का क्षय कहने में आया है। तो यह कर्म के क्षय की (अपेक्षा) भी अपने में केवलज्ञान उत्पन्न होने में या सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने में (है नहीं)। सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने में दर्शनमोह के अभाव की अपेक्षा उसमें है नहीं। आहाहा! यह तो करनेयोग्य अपनी चीज़ में है। अपनी पर्याय अपने से है, उसमें पर की कोई अपेक्षा (नहीं) कि निमित्त है तो हुआ। कथन आये। उचित निमित्त होता है, अनादि-अनन्त प्रत्येक पर्याय में जिस-जिस समय में जो होनेवाली पर्याय है, उसमें सामने अनुकूल-उचित निमित्त होता है, परन्तु यह उचित निमित्त है तो पर्याय होती है, ऐसी अपेक्षा नहीं। आहाहा! समझ में आया? बहुत अपूर्व बात है, प्रभु! आत्मा का हित कोई अलौकिक है, यह साधारण किसी प्रकार से हो जाता है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा!

वैराग्य कहा न वैराग्य? वैराग्य तब होता है कि जब अपनी सम्यग्दर्शन की पर्याय अपने द्रव्य के अवलम्बन से हुई, तब सम्यग्दर्शन की पर्याय के काल में शुभ-अशुभभाव से विरक्त होना, यह वैराग्य है... यह वैराग्य है। त्रिकाली ज्ञायकभाव की ज्ञान में प्रतीति होकर अनुभव होना... अनुभव होकर प्रतीति होना... आहाहा! उसमें परद्रव्य की कोई अपेक्षा (नहीं) कि कर्म... कर्म... कर्म... कर्म हटे तो ऐसा होता है और कर्म का उदय आये विकार होता है। यह सब बात झूठ है। शास्त्र में यह कथन आये तो वह भी झूठ है—व्यवहार है। कलशटीका में बहुत बार लिखा है। राजमलजी। झूठा व्यवहार... झूठे व्यवहार से कथन है, सत्य नहीं। सत्य व्यवहार तो अपनी पर्याय अपने से हुई, यह भी सद्भूतव्यवहारनय है। आहाहा! अपने द्रव्य से धर्म की पर्याय अपने द्रव्य के आश्रय से हुई, यह भी सद्भूतव्यवहार है। निश्चय से तो उस समय की पर्याय को द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं, निमित्त की अपेक्षा नहीं।—ऐसी पर्याय सत् है, उसको किसी हेतु की आवश्यकता नहीं। अहेतुक है। इतना शब्द कल एक घण्टे में लिया।

कर्ता-कर्म की.... किसी भी द्रव्य की पर्याय में कर्ता-कर्म भिन्न होता है, ऐसा है नहीं। वह-वह द्रव्य कर्ता और उस-उस द्रव्य की अपनी पर्याय कर्म अर्थात् कार्य है। आहाहा! यह कर्ता-कर्म यह भी उपचार से कथन है। दो भाग पड़ गये न? आहाहा! बाकी निर्विकारी पर्याय—धर्म होता है, वह अपने से होता है, उसको कोई अपेक्षा है ही नहीं। पर की अपेक्षा तो नहीं, परन्तु निश्चय से सत् है... सम्यग्दर्शन सत् है और ये (सम्यक्) दर्शन द्रव्य के लक्ष्य से होता है। तथापि द्रव्य और गुण की अपेक्षा उसको है नहीं। आहाहा! ऐसी बात मुश्किल पड़े। समझ में आया? अरे! कब समझे? बापू! मनुष्यभव अनन्त काल से मिला है, इसमें यह न समझेगा तो सारा मनुष्यपना व्यर्थ हो जायेगा। कहाँ जन्म लेगा ८४ लाख योनि में, इसका कोई पता नहीं।

यह यहाँ कहते हैं, **कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया... अन्यनिरपेक्ष...** कोई अपेक्षा ही नहीं। आहाहा! शास्त्र में अपेक्षा का ज्ञान तो बहुत आता है। तो कहा कि निमित्त है, उसका ज्ञान कराने को कहा। मोक्षमार्गप्रकाशक में है कि व्यवहार कहा है, वह निमित्त का ज्ञान (कराया)। व्यवहार कहता है ऐसा है नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवें अध्याय में है। व्यवहार कहता है ऐसा है नहीं। परन्तु व्यवहार निमित्त का ज्ञान कराने को कहा है। दूसरी चीज़ है, उसका ज्ञान (कराया), परन्तु दूसरी चीज़ से दूसरी चीज़ में कुछ हुआ, ऐसी कोई अपेक्षा वस्तु के स्वरूप में है नहीं। परमात्मा अपने स्वरूप की... ओहोहो! पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण स्वरूप है, उसमें प्रभुताशक्ति एक-एक गुण में प्रभुता से भरी पड़ी है। ऐसे अनन्त... अनन्त... गुण ईश्वरशक्ति से—प्रभुत्वशक्ति से (भरे हैं)। अपने प्रताप से स्वतन्त्रपने परिणमे, ऐसी प्रभुत्व नाम की शक्ति है, अनन्त गुण में प्रभुत्व नाम की शक्ति का रूप है। आहाहा!

तो अनन्त गुण जितने हैं, उनकी जो पर्याय होती है, उस पर्याय में गुण की अपेक्षा नहीं, परन्तु दूसरी पर्याय हुई तो यह पर्याय हुई। सम्यक् (दर्शन) की पर्याय हुई तो सम्यग्ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसी भी अपेक्षा नहीं। दूसरी पर्याय को दूसरी पर्याय की अपेक्षा नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि वह सत् है। सत् है, उसका हेतु होता नहीं। बन्ध अधिकार में लिया है, समयसार। द्रव्य अहेतुक, गुण अहेतुक, पर्याय अहेतुक।

बन्ध अधिकार में है। ऐसा यहाँ कहते हैं... यह समझना प्रभु! ये कोई (साधारण) बात नहीं। यह पढ़ लिया कि ऐसा कहते हैं... ऐसा कहते थे... ऐसा ज्ञान कर लिया, इसलिए समझ गया, ऐसी चीज़ नहीं, प्रभु!

कर्ता-कर्म की अन्यनिरपेक्षतया... तीन लोक के नाथ की भी अपनी पर्याय में बिल्कुल अपेक्षा नहीं। भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञप्रभु उनकी तो अपेक्षा नहीं अपने सम्यग्दर्शन में, परन्तु उनकी वाणी की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा! समझ में आया? और शास्त्र जो बना है, उसकी भी सम्यग्दर्शन की पर्याय में अपेक्षा नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सुनने से झटका सा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य... पुण्य नहीं। पुण्य से भी होता नहीं। अनुकूल निमित्त मिलता है, वह पुण्य से नहीं। क्योंकि पुण्य का परमाणु—जड़ भिन्न है और आनेवाली चीज़ भिन्न है। तो आनेवाली चीज़ को साता का निमित्त है तो आयी, ऐसी अपेक्षा है नहीं। आहाहा! शरीर में निरोगता हुई और सरोगता का व्यय हुआ, उसमें सातावेदनीय निमित्त हो, परन्तु उसकी अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसा भगवान त्रिलोक के नाथ के दर्शन करने से शुभभाव होता है, ऐसी कोई अपेक्षा नहीं। आहाहा!

यहाँ तो शुभभाव की बात है नहीं। यहाँ तो शुभभाव के काल में जो अपनी जानने की—ज्ञाता-दृष्टा की पर्याय है, उसमें शुभभाव की अपेक्षा नहीं है और शुभभाव में भगवान की वाणी और भगवान की अपेक्षा नहीं। आहाहा! ऐसी बात। यह तो निवृत्त तत्त्व है। प्रभु अन्दर तो निवृत्त तत्त्व है। निवृत्त तत्त्व समझे? कोई राग की प्रवृत्ति आदि का सद्भाव है ही नहीं। आहाहा! परद्रव्य से तो निवृत्त है, परन्तु राग, दया, दान, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, उससे भी निवृत्त तत्त्व है। कठिन बात, भाई! फिर भी व्यवहार आता है... व्यवहार आता है तो उस व्यवहार की अपेक्षा निश्चय को है नहीं। और व्यवहार आता है... शब्द में ऐसा आवे कि ज्ञानी को जब तक कर्म का जोर है तो राग आदि आ जाता है। अर्थ में लिखा है दो जगह पण्डित जयचन्द ने। हेमराज... धर्मी को अपने स्वरूप की प्रतीति अनुभव सम्यग्दर्शन स्वद्रव्य के अवलम्बन से हुआ, ऐसा कहने में आता है, परन्तु उसमें भी सम्यक् पर्याय हुई, वह षट्कारक से परिणमन करते

(हुई है)। षट्कारक में कर्तापने की बात है, पर्याय स्वयं कर्ता (होकर) स्वतन्त्रपने द्रव्य का लक्ष्य करती है, वह स्वतन्त्रपने करती है। आहाहा! ऐसी कर्ता-कर्म (आदि) षट्कारक की परिणति जो पर्याय में होती है, उसमें पर की अपेक्षा तो है नहीं, परन्तु उसके द्रव्य-गुण की भी अपेक्षा नहीं। आहाहा!

कल तो दृष्टान्त-दृष्टान्त बहुत बार लिया था। ये तो ज्ञानचन्दजी ने कहा, कल का थोड़ा (लो)। हम दो दिन से आये नहीं न? **(-अन्यद्रव्य से निरपेक्षतया...)** अर्थात् **(स्वद्रव्य में ही) सिद्धि होने से...** अपनी पर्याय में स्वद्रव्य से सिद्धि होने से... वह स्वद्रव्य की पर्याय का काल है—जन्मक्षण है। प्रवचनसार में ९९ गाथा में हार का दृष्टान्त दिया है। हार... हार... जिस क्षेत्र में जो मोती है, वह वहाँ ही है। १०८ मोती। जिस स्थान में मोती (है, वह) वहाँ ही है, आगे-पीछे नहीं। आगे-पीछे करोगे तो हार टूट जायेगा। ऐसा भगवान आत्मा में जिस समय में जो पर्याय (होनेवाली है) वह होगी, आगे-पीछे नहीं। आगे-पीछे करने जाओगे तो द्रव्य की दृष्टि टूट जायेगी। द्रव्य की दृष्टि टूट जायेगी, द्रव्य कहाँ (टूटता है)? समझ में आया? ऐसी बात है, बापू! यह तो थोड़ा ज्ञानचन्दजी... कल तो एक लाईन एक घण्टे ली थी। गजब बात है, बापू! यह तो अपूर्व बात है। यह कोई पक्ष की या सम्प्रदाय की बात नहीं। यहाँ तो ऐसी अपेक्षा कहकर भी... आहाहा!

त्रिलोकनाथ... असंख्य प्रतिमायें जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर असंख्य हैं। इन्द्र भी दर्शन करते हैं समकिती... समकिती... क्षायिक समकिती। आहाहा! ऐसा विकल्प आता है तो लक्ष्य वहाँ जाता है। ऐसी वस्तु की स्थिति है। एक ओर कहना कि भगवान की प्रतिमादि की भी... अरे! देव-गुरु की वाणी जो सच्ची वाणी है, उसकी पर्याय में अपेक्षा नहीं। आहाहा! दूसरे दिन ऐसे कहना कि अपना सम्यग्दर्शन अपने से हुआ, तो भी शाश्वत् जिनप्रतिमा है, उसका दर्शन क्षायिक समकिती करते हैं। आहाहा! यह विकल्प के काल में विकल्प आता है। यह विकल्प उससे हुआ, ऐसा नहीं। इन्द्र जब जन्मे पहले... सिद्धान्त में ऐसा (पाठ) है... एक अक्षर भी फेरफार हो जाये शास्त्र का तो दृष्टि विपरीत हो जाती है। इन्द्र जन्मता है तो पहले भगवान की (अकृत्रिम) प्रतिमा के दर्शन करने को जाता है, ऐसा सिद्धान्त में पाठ है। एकावतारी—एक भवतारी

सम्यग्दृष्टि हो, आहाहा! पर जब जन्मते हैं... जन्मते (कहने से) उनकी कोई माता है नहीं। फूल की शैय्या है, उसमें एकदम उत्पन्न हो जाते हैं। अन्तर्मुहूर्त में जवान शरीर जैसा शरीर उत्पन्न हो जाता है... फूल की शैय्या में एकदम। आहाहा!

ऐसा क्षायिक समकिती जीव हो, वह भी तुरन्त कहता है कि तैयारी करो, भगवान के मन्दिर में दर्शन (करने) जाना है। आहाहा! ऐसा सिद्धान्त है शास्त्र में। शास्त्र में न्याय से (विरुद्ध) एक भी अक्षर का फेरफार करे (तो) दृष्टि विपरीत है। समझ में आया? आहाहा! तो इन्द्र भी आकर (कहते हैं), तैयारी करो। आहाहा! देव ने हाथी का रूप धारण करे, इन्द्र ऊपर बैठे। हाथी का रूप, ऐरावत हाथी। आहाहा! भगवान के दर्शन करने को सारे देव करोड़ों देव साथ में लेकर जाते हैं। आहाहा! यह भाव आया, वह पुण्यबन्ध का कारण है। ये आये बिना रहे नहीं और वह धर्मस्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया? धर्म नहीं, इसलिए (न) आये ऐसा नहीं है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि को, क्षायिक समकिती को... शान्तिनाथ आदि कितने तीर्थंकर क्षायिक समकित लेकर आते हैं, ९६००० (स्त्री के) साथ विवाह करते हैं। प्रतिदिन—एक-एक दिन में सैकड़ों रानियों से विवाह करते हैं। तीन ज्ञान और क्षायिक समकित। यह चारित्र का दोष है। जब तक वीतरागता न हो, तब तक ऐसा राग आता है। परन्तु आता है, वह धर्म है, ऐसा नहीं। आहाहा! यहाँ तो भगवान की भक्ति की, स्तुति की, (तो माने कि) धर्म हो गया। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! धूल में भी नहीं, अर्थात् यह पुण्यानुबन्धी पुण्य भी नहीं। वह तो पापानुबन्धी पुण्य है। समकिती की पूजा, भक्ति का राग पुण्यानुबन्धी पुण्य है। आहाहा! इतना सब अन्तर है। समझ में आया?

यह यहाँ कहने में आता है, **(स्वद्रव्य में ही) सिद्धि होने से, जीव के अजीव का कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता।** जीव में अपने अतिरिक्त पर का कर्तृत्व-करना (और) पर को रखना, ऐसा सिद्ध नहीं होता। **इसलिए जीव अकर्ता सिद्ध होता है।** आहाहा! यह सारांश। क्रमबद्ध में अकर्ता(पना) सिद्ध होता है, इस कारण से। अपनी पर्याय क्रमसर होती है उसमें पर की अपेक्षा नहीं। इस कारण क्रमबद्ध में अकर्ता(पना) सिद्ध होता है। आहाहा! ऊपर अकर्ता कहा न? ऊपर यह लिया है। **आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक**

सिद्ध करते हैं। ऊपर पहला शब्द है। यह अकर्तृत्व सिद्ध किया। आज तो आठवाँ दिन है। शनिवार से शुरु किया, आज शनिवार है। आहाहा! पार नहीं, प्रभु! गम्भीरता का पार नहीं। वीतराग की वाणी और उसका भाव सामान्य प्राणी नहीं समझ सके। आहाहा!

हम मलाड गये थे न? हमने देखा न, उनके लोग हैं, वे एकदम मूर्ति का विरोध करने लगे। मलाड गये तब। क्योंकि ये लोग मूर्ति को मानते नहीं। मूर्ति के पास जाये नहीं इसलिए एकदम मूर्ति विरोध के गीत गाने लगे। भगवान दास ने कहा, बन्द कर दे। कहाँ एकान्त हो जाता है, उसकी खबर नहीं लोगों को। आहाहा! प्रचार ही ऐसा है वहाँ। मूर्ति नहीं... मूर्ति नहीं... मूर्ति है नहीं... प्रतिमा है नहीं। यहाँ तो कहते हैं, शाश्वत् असंख्य प्रतिमा, असंख्य मन्दिर हैं। आहाहा! ये मन्दिर है तो उससे शुभभाव होता है, ऐसा है नहीं और यह शुभभाव है... जब तक वीतराग न हो, तो अपनी कमजोरी से शुभभाव आये बिना रहता नहीं, तथापि शुभभाव धर्म नहीं और धर्म का कारण नहीं। अन्यनिरपेक्ष। राग की अपेक्षा बिना सम्यग्दर्शन की पर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! यहाँ कोई पक्ष नहीं, वाडा नहीं। यहाँ तो तीन लोक के नाथ सीमन्धरस्वामी भगवान फरमाते हैं, वह बात है। आहाहा! क्या कहें? क्या करे? समझ में आया? इसलिए जीव... वह पहले शब्द कहा था (कि) अकर्तापना दृष्टान्तपूर्वक सिद्ध करते हैं। तो क्रमबद्ध में अकर्तापना सिद्ध किया।

भावार्थ : सर्व द्रव्यों के परिणाम भिन्न-भिन्न हैं... अर्थ करनेवाले (जयचन्दजी) कहते हैं, अपनी सादी भाषा में। **सर्व द्रव्यों के परिणाम भिन्न-भिन्न हैं, सभी द्रव्य अपने-अपने परिणामों के कर्ता हैं।** आहाहा! वाणी का कर्ता भी आत्मा नहीं प्रभु! आहाहा! वाणी जब होती है, वह अपने स्वकाल में वचन (-भाषा) वर्गणा से भाषारूप परिणमना (होता है), उस काल में भाषा होती है। आहाहा! समझ में आया? आत्मा से नहीं। यह तो बोलते-बोलते अहंकार आ जाये कि मैं कैसा बोलता हूँ, मैं कैसा लोगों को सुनाता हूँ। आहाहा! अरे प्रभु! सर्व द्रव्य का उसका परिणाम स्वतन्त्र है। तेरी भाषा से उसका परिणाम आता है और भाषा की पर्याय तेरे से होती है, (ऐसा है नहीं)। आहाहा! बहुत कठिन काम। यह तो तीन लोक के नाथ सीमन्धर परमात्मा की वाणी है।

सन्त आढ़तिया होकर ये बात करते हैं। वहाँ गये थे, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य गये थे।

तो कहते हैं कि **सभी द्रव्य अपने-अपने परिणामों के कर्ता हैं।** उन परिणामों के कर्ता हैं। **वे परिणाम उनके कर्म हैं।** देखो! जो द्रव्य का जो परिणाम उस समय... उस समय में होनेवाला हुआ। उसका कर्ता यह द्रव्य कहा यहाँ। अभी इतना भेद है। नहीं तो परिणाम का कर्ता परिणाम ही है। समझ में आया? आहाहा! ६२वीं गाथा पंचास्तिकाय (में आता है), विकार का परिणाम षट्कारक से अपने से होता है। कर्म की अपेक्षा नहीं, विकार अपने से स्वतन्त्र पर्याय में होता है। ऐसा पर्याय का स्वभाव... स्वभाव ऐसा है। उसको पर की अपेक्षा नहीं। विकार के षट्कारक परिणमन में पर की अपेक्षा नहीं, तो निर्विकारी सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि परिणाम... आहाहा! यह तो धर्म की पहली सीढ़ी है, बापू! यह कठिन बात है। इस सम्यग्दर्शन और सम्यग्दर्शन का कर्ता कौन और वो किसका कार्य, कैसे होता है, यह दशा कैसी होती है? आहाहा! इसके बिना सब शून्य है। सम्यग्दर्शन बिना प्रतिमा, साधुपना, २८ मूलगुण, पंच महाव्रत सब संसार है। सब संसार है। शुभभाव को संसार कहा है।

यहाँ कहते हैं, परिणाम उसका कार्य है। परिणाम का कर्ता वह द्रव्य है और वह परिणाम उसका कार्य-कर्म है। आहाहा! कर्ता राग और निर्मल पर्याय—समकित कर्म, ऐसा है नहीं। समझ में आया? **निश्चय से किसी का किसी के साथ...** निश्चय से—यथार्थ में—वास्तव में। **किसी का किसी के साथ कर्ताकर्मसम्बन्ध नहीं है।** आहाहा! भगवान की वाणी कर्ता और सामने श्रोता को ज्ञान होता है, ऐसी कोई (व्यवस्था) है नहीं। अरेरे! यह बात स्वीकार करना... आहाहा! यह तो शान्त मार्ग वीतराग का है। श्रीमद् कहते हैं एक बार 'वचनामृत वीतराग के परम शांतरसमूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल रे, गुणवंता रे ज्ञानी अमृत वरस्या रे पंचमकाल में।' आहाहा! वचनामृत वीतराग के और परम शान्तरसमूल... परम शान्ति—रागरहित शान्ति, यह वीतराग के वचन का सार है। औषध जो भवरोग के... यह वीतराग की वाणी में भाव कहे, वह भव के रोग नाश करने की बात है। औषध जो भवरोग के, परन्तु कायर को प्रतिकूल। आहाहा! शास्त्र में तो वहाँ तक कहा है कि शुभभाव का रुचिवन्त है, वह

नपुंसक है, पावैया—हिंजडा है। अपने पुरुषार्थ की उसको खबर नहीं। दो-तीन जगह आया है समयसार में। 'क्लीब... क्लीब...' संस्कृत में 'क्लीब' है। नपुंसक। शुभभाव की रचना करनेवाला और शुभ से धर्म होता है, ऐसा माननेवाला नपुंसक—हिंजड़ा है, पावैया है। ऐ सेठ!

मुमुक्षु : कहाँ लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार में लिखा है। यह समयसार नहीं? नाम बताना है? यह समयसार है या नहीं? ४३ के एक गाथा पहले। ४३... ४३... ४३ हों! कितने में? ४३ गाथा में है, देखो! पृष्ठ ८२ है। ४३ गाथा, पश्चात् उसकी टीका। ४१, ४२, ४३ गाथा उसकी टीका। आहाहा! **इस जगत में आत्मा का असाधारण लक्षण न जानने के कारण नपुंसकता से अत्यन्त विमूढ़ होते हुए...** दूसरी जगह भी है। यह तो एक जगह... आहाहा! है? ४१, ४२, ४३ गाथा, उसकी टीका। टीका-टीका। आया हाथ? क्या है? **इस जगत में आत्मा का असाधारण लक्षण...** जानना-देखना, यह तो भगवान आत्मा (का लक्षण) है। उसका लक्षण राग करना कि पर का करना है ही नहीं और शुभराग करने से धर्म होता है, ऐसा उसका लक्षण भी नहीं। आहाहा!

लक्षण न जानने के कारण नपुंसकता से अत्यन्त विमूढ़ होते हुए... है या नहीं श्लोक? पृष्ठ में अन्तर हो गया। ये हिन्दी है। ये भी हिन्दी है? ८२ पृष्ठ है हिन्दी में। टीका की पहली लाईन है। आहाहा! दूसरी जगह है, परन्तु यह एक नमूना बस है। दूसरा जगह... परन्तु यहाँ इतना आया। १५४ पृष्ठ? गाथा। हाँ। यह सामायिक में है। सामायिक का पाठ है न, उसमें है। हाँ, हाँ। ये निकाला। ये सब बताया है। ये कोई नया नहीं है, बहुत बार बताया है पहले। क्या आया? यहाँ चिह्न नहीं, इसलिए खबर नहीं। १५७? कितनी? १५४ गाथा। १५४। आहाहा! यह तो हिन्दी है न, तो चिह्न नहीं किया है। देखो! देखो, इसमें है। १५४।

समस्त कर्म के पक्ष का नाश करने से... १५४ की टीका। **समस्त कर्म के पक्ष का नाश करने से उत्पन्न होनेवाला जो आत्मलाभ (निजस्वरूप की प्राप्ति)... आत्मलाभरूप मोक्ष को इस जगत में कितने ही जीव चाहते हुए भी, मोक्ष के कारणभूत**

सामायिक की—जो (सामायिक) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वभाववाले परमार्थ भूत ज्ञान के भवनमात्र है... सामायिक और सम्यग्दर्शन तो आत्मा का भवन—आत्मा के स्वरूप में परिणमन है। आहाहा! है ? **एकाग्रतालक्षणयुक्त है और समयसारस्वरूप है, उसकी—प्रतिज्ञा लेकर भी...** प्रतिज्ञा लेते हैं कि हमको सामायिक करना मोक्षमार्ग... आहाहा! **प्रतिज्ञा लेकर भी दुरन्त कर्मचक्र को पार करने की नपुंसकता के...** शुभ से पार होना, यह नहीं करते। शुभ में रहना, वह नपुंसक है। आहाहा! क्यों ? आत्मा में एक वीर्य नाम का गुण है। ४७ शक्ति में है पीछे। तो वीर्यगुण का कार्य क्या ? भगवान तो वहाँ कहते हैं कि अपने स्वरूप की रचना करे, वह वीर्य। राग की रचना करे, वह नपुंसक है। आहाहा! सब नपुंसक ही है, भान कहाँ है ? आज का थोड़ा नया आया, हों! आहाहा! है अन्दर ?

अपनी सामायिक की प्रतिमा करे कि हमें नव कोटि से राग का त्याग और हमारे धर्म... परन्तु शुभभाव से न हटना, यह नपुंसकता है। हटता नहीं। नपुंसक वहाँ शुभभाव में रुक जाता है। आहाहा! आत्मा में वीर्य नाम का गुण है। इस गुण का पीछे लिखा है शक्ति में। सब आधार देने जाये तो देर लगे। वीर्यगुण का कार्य क्या है ? कि अपनी जो शुद्ध पवित्र जो शक्तियाँ अनन्त हैं, उसकी पर्याय में रचना करना, वीर्य से शुद्ध की रचना करना, वह वीर्यगुण का कार्य है। आहाहा! स्वरूप की शुद्ध रचना करना, आहाहा! यह वीर्य अर्थात् आत्मा का पुरुषार्थ है। यह वीर्य रेत है (जिससे) पुत्र-पुत्री होते हैं, वह तो जड़ मिट्टी-धूल है। आत्मा में पुरुषार्थ—वीर्य नाम का ऐसा एक गुण है कि जो अपनी अनन्त शक्ति—गुण निर्मल हैं—पवित्र हैं, उसकी पर्याय में रचना करे। राग की रचना नहीं। आहाहा!

तथापि ज्ञानी को राग आता है, परन्तु राग का कर्तृत्व मेरा है, राग मुझे करनेयोग्य है, ऐसा है नहीं। एक बात। और दूसरी बात ऐसे भी है कि ज्ञानी को राग आता है भक्ति आदि का, यह परिणमन है तो राग का कर्ता मैं हूँ, ऐसा भी मानता है। नय के अधिकार में आता है। ४७ नय। करनेयोग्य है, ऐसे नहीं, परन्तु परिणमन होता है, उस कारण से कर्ता कहने में आता है। आहाहा! इतनी अपेक्षायें। प्रभु... प्रभु का पार नहीं मिले।

वीतरागमार्ग गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर... आहाहा! उसका एक-एक पद और एक-एक श्लोक समझना बहुत अलौकिक बात है। इसको ऐसे वांचा जाये, पढ़ा जाये... एक व्यक्ति ने (कहा), महाराज! स्वामीजी! आप समयसार की बहुत प्रसिद्धि—महिमा करते हो। हमने तो १५ दिन में समयसार पढ़ लिया। आहाहा! अरे भाई! एक लाईन समझना, एक गाथा और एक पंक्ति समझना अलौकिक बात है। आहाहा!

कहते हैं कि जो कोई अपने स्वरूप में प्रतिज्ञा करके... हमें सामायिक करना है और सामायिक मेरे मोक्ष का कारण है, ऐसी प्रतिज्ञा लेकर भी शुभभाव से हटते नहीं और अपनी प्रतिज्ञा अनुसार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की परिणति करते नहीं और राग की परिणति में पड़ा है, आहाहा! नपुंसक है—पावैया है—हिंजड़ा है। जैसे नपुंसक को वीर्य होता नहीं तो पुत्र होता नहीं, पुत्र-पुत्री। इसी प्रकार शुभभाव नपुंसक है। शुभभाव में से धर्म की प्रजा उत्पन्न होती नहीं। अरे, भारी कठिन बात! तथापि ज्ञानी को भी शुभभाव आता है। जानता है कि मेरी कमजोरी है। हमारा मूल वीर्य है, इसका कार्य है नहीं। मेरा पुरुषार्थ है जो अन्दर, आहाहा! उसका कार्य नहीं। क्योंकि वीर्य तो पवित्र है अन्दर। अनन्त गुण के साथ में वीर्यगुण पवित्र है। पवित्र का कार्य तो पवित्रता की रचना, यह कार्य है। और राग की पर्याय में दुःख उत्पन्न होता है, यह मेरे पवित्र पुरुषार्थ—वीर्य गुण का कार्य नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! ज्ञानचन्दजी आये नहीं थे न। कहे, दोबारा थोड़ा लो। तो कहीं इसका यह दोबारा आये, ऐसा कुछ है? यह तो आनेवाला हो, वह आये।

किसी के साथ कर्ताकर्म सम्बन्ध नहीं। इसलिए जीव अपने परिणाम का कर्ता है... है? **और अपने परिणाम कर्म हैं। इसी प्रकार अजीव अपने परिणामों का ही कर्ता है...** आहाहा! **और अपने परिणाम कर्म हैं।** कर्म अर्थात् कार्य। **इस प्रकार (जीव) दूसरे के परिणामों का अकर्ता है।** ये सिद्ध किया, लो।

इस प्रकार जीव अकर्ता है तथापि उसे बन्ध होता है, यह कोई अज्ञान की महिमा है, इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं। उसका कलश है। अच्छी बात है। एक कलश लेंगे।

अकर्ता जीवोऽयं स्थित इति विशुद्धः स्वरसतः
स्फुरचिज्जयोतिर्भिश्छुरितभुवनाभोगभवनः।
तथाप्यस्यासौ स्याद्यदिह किल बन्धः प्रकृतिभिः
स खल्वज्ञानस्य स्फुरति महिमा कोऽपि गहनः ॥१६५॥

(स्वरसतः विशुद्ध) निजरस से विशुद्ध है... भगवान तो। आहाहा! अपनी शक्ति—अपना रस—अपने स्वभाव से तो प्रभु आत्मा पवित्र है। आहाहा! है ? **निजरस से विशुद्ध** और **(स्फुरत-चित्-ज्योतिर्भिः छुरित-भुवन-आभोग-भवनः) स्फुरायमान होती हुई...** आहाहा! क्या कहते हैं ? भगवान (आत्मा) तो शुद्ध चैतन्यघन विशुद्ध है और उसमें से जो पर्याय प्रगट होती है—स्फुरायमान होती हे, वह पवित्र होती है। आहाहा! जो स्वभाव सर्वज्ञस्वरूपी है... आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है। सर्वज्ञस्वभाव का प्रत्येक (गुण) में उसका रूप है। बहुत विचार किया परन्तु हमको बराबर बैठा नहीं। भगवान की वाणी की इतनी बात... प्रत्येक का बहुत विचार किया। सर्वज्ञ नाम का स्वभाव है... पाठ ऐसा है कि प्रत्येक गुण में उसका रूप है। अन्दर पकड़ में आता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आपको नहीं बैठता हो हमको....

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ में आता नहीं। जो हो ऐसा कहते हैं, बापू! बहुत सूक्ष्म विचार करते हैं... सर्वज्ञ(गुण) है, उसका प्रतयेक गुण में रूप क्या ? रूप कहा है, चिद्विलास में 'रूप' कहा है। अस्तित्वगुण का रूप, प्रमेयत्वगुण का रूप, वह तो ख्याल में आ जाता है। जैसे ज्ञान है और अस्तित्वगुण भिन्न है। ज्ञानगुण है, वह अस्तित्वगुण से है, ऐसा नहीं। अस्तित्वगुण भिन्न है। क्योंकि '**द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः**' उमास्वामी का सूत्र है। तत्त्वार्थसूत्र में। '**द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः**' गुण के आश्रय से गुण नहीं, गुण का आश्रय द्रव्य है। आहाहा! तो कहते हैं, यहाँ चैतन्यज्योति प्रगट होती है—स्फुरायमान होती है। सर्वज्ञगुण आदि स्वभाव जो है, वह पर्याय में प्रगट होता है। किसी की अपेक्षा से नहीं, किसी के कारण से नहीं। आहाहा! है ?

जिसकी स्फुरायमान ज्योति हुई... **चैतन्यज्योतियों के द्वारा लोक का समस्त विस्तार व्याप्त हो जाता है...** आहाहा! अपने स्वभाव की पर्याय प्रगट होते ही सारे लोकालोक

को जान लेते हैं। व्याप्त होता है, उसका अर्थ यह है। सारे लोकालोक को जान लेते हैं। कोई चीज़ को करता तो नहीं, परन्तु कोई चीज़ जानने में आये बिना रहती नहीं। आहाहा! अपने अतिरिक्त कोई चीज़ का कर्ता नहीं और अपने सिवा अनन्त चीज़ को जाने बिना रहता नहीं। आहाहा! ऐसा स्वभाव है प्रभु! बहुत कठिन काम है, भाई! विचार तो... यहाँ तो पूरे दिन निवृत्ति है। तो यही पद्धति चलती होती है। बहुत बार तो सूक्ष्म बात पड़े तो हमको पता नहीं लगता। समझ में आया?

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ये अपना गुण है। ज्ञानगुण है, यह अस्तित्वगुण से भिन्न है। अस्तित्वगुण का ज्ञान में रूप है, इसका अर्थ? कि ज्ञान 'है' वह अपने से है, ऐसा अस्तित्व का रूप उसमें है। अस्तित्व गुण नहीं। अरे! अरे! समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी है, भगवान आत्मा अस्तित्वस्वरूपी है। अस्तित्व का ज्ञानगुण में (रूप है)। अस्तित्वगुण के कारण से ज्ञानगुण है, ऐसा नहीं और अस्तित्वगुण का ज्ञानगुण में रूप है। रूप का अर्थ ज्ञानगुण 'है', वह अपने अस्तित्व से है। अस्तित्वगुण के कारण से है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह बात तो सूक्ष्म है, बापू!

मुमुक्षु : ....स्वभाव ज्ञान ही है, अस्तित्व स्वभाव ज्ञान ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान है, यह तो भिन्न बात है। परन्तु ज्ञान सर्वज्ञ(स्वभावी) है और सब गुण में उसका में रूप है, ये क्या—उसका पता नहीं लगता। भाई लालचन्दभाई! यहीं तो देखा हो, ऐसा कहना। क्योंकि बात तो बहुत सूक्ष्म विचार बहुत ले गये... एक-एक बात, शास्त्र की एक-एक गाथा बहुत स्पष्टीकरण करके हम समझते हैं अन्दर। ऐसे (ऊपर से) मान लेना, ऐसा नहीं। भाव में भासन होना चाहिए। ज्ञान है, उसमें अस्तित्व गुण नहीं, परन्तु अस्तित्व का रूप है, ये तो बराबर है। क्यों? ज्ञान है तो ज्ञान 'है' न? 'है' तो उसका 'है'पना आया अपने से। तो ऐसा एक गुण में दूसरे गुण का रूप भले हो, परन्तु सर्वज्ञ का रूप क्या है? सूक्ष्म पड़ता है भैया! भगवान कहते हैं तो यथार्थ है, परन्तु उसका पार ले सके नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ये स्फुरायमान ज्योति जब प्रगट होती है तो लोकालोक को जानती है, ऐसा कहते हैं। है? **समस्त विस्तार व्याप्त हो जाता है, ऐसा जिसका स्वभाव**

है... ऐसा तो जीव का स्वभाव है। आहाहा! अन्दर सर्वज्ञस्वभाव है... पर्याय में सर्वज्ञपना प्रगटे ये तो उसका स्वभाव है। प्राप्त की प्राप्ति है। अन्दर पड़ा है भगवान (आत्मा) पूर्णानन्द सर्वज्ञ (स्वभावी)। यह पर्याय में सर्वज्ञपना आता है, यह उसमें से आता है। उस सर्वज्ञपने में लोकालोक जानने में आता है। भले क्षेत्र इतने में है शरीर प्रमाण से। आकाश का अन्त नहीं (कि) कहाँ आकाश पूरा हुआ? (अन्त) हुआ तो पीछे क्या? उसका भी ज्ञान में (प्रमाण) आ जाता है। तो (प्रमाण) आ जाता है, इसलिए आकाश का अन्त आ गया—ऐसा है नहीं। अनन्त को अनन्तरूप से जानने में आया। अनन्त को जाना तो अन्त हो गया? समझ में आया? आहाहा!

(अयं जीवः) ऐसा यह जीव (इति) पूर्वोक्त प्रकार से... आहाहा! **(परद्रव्य का तथा परभावों का) (अकर्ता स्थितः) अकर्ता सिद्ध हुआ...** अमृतचन्द्राचार्य। क्रमबद्ध की टीका भी उन्होंने की और फिर कलश भी उन्होंने किये। यह क्रमबद्ध का कलश है। जैसे मन्दिर बनाकर पीछे कलश चढ़ाते हैं, ऐसे यह टीका है मन्दिर और ऊपर कलश चढ़ाया। आहाहा! अलौकिक बात है। दुनिया से (भिन्न) ये वस्तु ऐसी है कि ऐसी बात कहनेवाले को पागल कहे। परमात्मप्रकाश में आया है। पागल लोग ज्ञानी को पागल माने, ऐसी ये चीज़ है। आहाहा! अरेरे! वस्तु... यहाँ यह कहा। जो अन्दर शुद्धस्वरूप है... अकर्तापना क्यों है? कि ज्ञानज्योति भगवान पूर्ण स्वरूप है, आहाहा! उसकी शक्ति में से पूर्ण जानने की व्यक्तता आती है, परन्तु किसी चीज़ का वह कर्ता है और किसी चीज़ से ये केवलज्ञान स्फुरायमान हुआ ऐसा है नहीं। आहाहा! कर्म के क्षय से केवलज्ञान हुआ ऐसा है नहीं। ये तो अपेक्षा हो गयी। पहले तो कहा कि निरपेक्ष (तत्त्व है)। आहाहा! भभूतमलजी! ये कहीं सुना ही नहीं पैसे में। यह सब लोहे का धन्धा... लोहे में तो जंग लगता है। लोहा... लोहा... जंग... जंग... आहाहा!

कहते हैं कि प्रभु! मैंने अकर्ता क्यों कहा? क्रमबद्ध में अकर्ता(पना) क्यों कहा? कि प्रभु का स्वरूप तो सर्वज्ञस्वभावी है न। यह कहा न पहले? निजरस से विशुद्ध है... निजरस से विशुद्ध है। अपनी शक्ति-गुण से पवित्र है। आहाहा! पर के कारण से है नहीं। अपने रस से विशुद्ध है। आहाहा! और जिसकी **स्फुरायमान होती हुई चैतन्यज्योतियों**

के द्वारा... चैतन्य की प्रकाशपर्याय हुई... आहाहा! उसके द्वारा लोक का **समस्त विस्तार व्याप्त हो जाता है...** यह व्यवहार से बात करते हैं। यह ज्ञान की सर्वज्ञशक्ति है, यह पर्याय में आयी तो सर्व लोक को जानते हैं। लोकालोक को जानते हैं, (ऐसा कहना भी) व्यवहार है। वास्तव में अपनी पर्याय को ही जानते हैं। लोकालोक को तो पर्याय छूती ही नहीं। परन्तु दुनिया ने ख्याल में आवे कि स्फुरायमान शक्ति की शक्ति (-सामर्थ्य) कितनी है, ये माप बताने को 'लोकालोक जानते हैं' ऐसा कहा। आहाहा! ऐसी धर्म की चीज़ है भाई! क्या हो?

चैतन्यज्योतियों के द्वारा... चैतन्यज्योतियों से हों, एक पर्याय नहीं। अनन्त प्रकाश पर्याय हुई। सर्वज्ञ जहाँ हुए तो चैतन्य की सब शक्तियाँ पूर्ण प्रकाशमान हो गयी। चैतन्य की एक सर्वज्ञपर्याय जहाँ प्रगट हुई तो उसके साथ सर्व शक्ति की व्यक्तता हो गयी। शक्ति की स्फुरायमान चैतन्यज्योतियाँ... जितनी चैतन्यज्योति हैं, इतनी सब पर्याय में स्फुरायमान हो गयी। आहाहा! **ऐसा यह जीव...** आहाहा! **पूर्वोक्त प्रकार से (परद्रव्य तथा परभावों का अकर्ता...)** देखो! अकर्ता सिद्ध हुआ। **तथापि...** ऐसा होने पर भी... प्रभु! तू ऐसा है ही। आहाहा!

तथापि **उसे इस जगत में...** आहाहा! **कर्मप्रकृतियों के साथ जो यह (प्रगट) बन्ध होता है...** अरे रे! ऐसी चीज़ चैतन्यज्योति जलहल ज्योति... देवीलालजी कहाँ बैठे हैं? नहीं? नहीं हैं। कुछ काम होगा। हैं? नहीं हैं। यह तो चैतन्य की स्फुरायमान ज्योति... एक ज्ञान (पर्याय) स्फुरायमान नहीं (होती), चैतन्य की सर्व शक्तियाँ हैं... जैसे सर्वज्ञपना पूर्ण हुआ, ऐसे सर्व शक्ति की पर्याय में पूर्णता प्रगट हुई। आहाहा! अरेरे! ऐसी वस्तुस्थिति है तो भी जगत में कर्मप्रकृतियों के साथ बन्ध होता है! आहाहा! अरेरे! ऐसा कर्म का बन्धन! आहाहा!

क्योंकि **(सः खलु अज्ञानस्य कः अपि गहनः महिमा स्फुरति) सो वह वास्तव में अज्ञान की कोई गहन महिमा...** आहाहा! इसके स्वभाव की गहन महिमा है, परन्तु उसके अज्ञान की गहन महिमा (देखो कि) ऐसी चीज़ को बन्ध होता है! आहाहा! यह क्या आया? महाप्रभु चैतन्यज्योति अन्दर शक्ति से स्फुरायमान वस्तुरूप, लो। समझ में

आया ? ऐसी चीज़ है, आहाहा ! अनन्त चैतन्य शक्तियों से विराजमान, स्फुरायमान चैतन्य ज्योति परमातमा है, ऐसी चीज़ को प्रकृति का बन्ध होता है ! अरेरे ! यह क्या होता है ? ऐसे कहते हैं।

कर्मप्रकृतियों के साथ प्रगट बन्ध होता है, यह वास्तव में अज्ञान की कोई गहन महिमा है। आहाहा ! अरेरे ! अज्ञान समझना... ऐसी चीज़ में... अज्ञान की कोई गहन महिमा है कि उसको कर्मप्रकृति का बन्ध होता है। जिसमें अनन्त ज्योति स्फुरायमान-अन्दर प्रगट है। एक नहीं परन्तु अनन्त चैतन्यज्योति प्रगट है, ऐसा अपना परमात्मस्वरूप है, उसको कर्मप्रकृति का बन्धन हो, यह कोई अज्ञान की महिमा है। वस्तु के स्वरूप का भान नहीं। अज्ञान की गहन महिमा है। पार न पावे, ऐसा अर्थ लिखा है टीका में। गहन अर्थात् पार न पावे। पार तो पा लेते हैं समकिती। परन्तु अज्ञान की ऐसी गहन महिमा है कि ऐसा चैतन्य स्फुरायमान अनन्त शक्ति का पिण्ड प्रभु, आहाहा ! उसको कर्मबन्धन हो, यह कोई अज्ञान से होता है। अज्ञान की कोई गहन महिमा है। उस अज्ञान का नाश आत्मा के स्वभाव के आश्रय से हो सकता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)